



E-ISSN: 2706-9117

P-ISSN: 2706-9109

www.historyjournal.net

IJH 2024; 6(2): 235-241

Received: 15-07-2024

Accepted: 20-08-2024

भरत यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय
इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व
विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर
विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश,
भारत

भानगढ़ (बीना तहसील) मध्यप्रदेश के पुरातात्विक सर्वेक्षण से प्राप्त स्थापत्य शिल्प : शिल्पशास्त्रीय विधान

भरत यादव**प्रस्तावना :-**

भारत वर्ष की समृद्ध परम्पराएं, तत्वज्ञान और संस्कृति भारतीय जनमानस की महत्वपूर्ण धरोहर हैं। हजारों वर्षों पूर्व स्थापित भारतीय कला सामग्री वैसी ही समृद्ध एवं ऐश्वर्यशाली है, जैसी भारतीय साहित्य, धर्म व दर्शन परम्परा की है। भारत की समृद्ध कला में विशिष्टताओं के अतिरिक्त प्रेरणा का ऐसा गुप्त स्रोत है, जो गौरवशाली एवं अनुपम है। भारतीय भौगोलिक बनावट असमान होने के बाद भी प्रत्येक क्षेत्र अपनी परम्पराओं एवं सांस्कृतिक चेतना की रक्षा के प्रति कटिबद्ध नजर आता है। भारत के मध्य में स्थित मध्यप्रदेश एक ऐसा ही क्षेत्र है जो अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के कारण न केवल इतिहासकारों की जिज्ञासा का विषय बना हुआ है, वरन इसमें छिपे हुए अनेक अज्ञात पहलुओं के कारण शोध का क्षेत्र निरूपित हुआ है। इन अज्ञात पहलुओं का गहनता से अध्ययन के लिए पुरातत्त्व विषय का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है। पुरातत्त्व वास्तव में अतीत की जानकारी प्राप्त करने के लिए भौतिक अवशेषों का अध्ययन करता है। जो एक निश्चित ऐतिहासिक काल-क्रम (Chronology) एवं पारिस्थितिकी (Ecology) के परिप्रेक्ष्य में एक सुनिश्चित देश (Space) तथा काल (Time) के सन्दर्भ में भौतिक पुरावशेषों के आधार पर मानव के सांस्कृतिक आचरण का अध्ययन करता है।^[1]

इसी सन्दर्भ में मध्य प्रदेश के बुन्देलखंड क्षेत्रांतर्गत सागर जिले में स्थित प्राचीनतम सामरिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र एरण एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र हमेशा ही पुरातात्विक ज्ञान के प्रकाश हेतु विख्यात रहा है। सागर जिले की बीना तहसील के अन्तर्गत एरण एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र भानगढ़ एक ऐसा ही प्रमुख पुरास्थल है, जो पुरातात्विक रहस्यों के साथ मानवीय विकास की अविरोध धारा के विभिन्न आयामों को अपने में समाहित किया हुआ है।

पुरास्थल की भौगोलिक स्थिति :-

भानगढ़ नामक पुरास्थल (24°18'51" उत्तरी अक्षांश तथा 78°16'05" पूर्वी देशांतर) मध्यप्रदेश के बीना तहसील (सागर जिला) में सागर मुख्यालय से उत्तर-पश्चिम दिशा में लगभग 88 किलोमीटर दूर स्थित है। यह पुरास्थल एक बरसाती नाले के तट पर स्थित है। वर्तमान समय में इसके उत्तर दिशा में आमखेरा, दक्षिण दिशा में गुरियाना, पूर्व दिशा में पुराजादो तथा पश्चिम दिशा में वेदेही ग्राम स्थित है। यहाँ से ऐतिहासिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक के सांस्कृतिक क्रम का प्रमाण मिलता है। ग्राम के बाहर पुरास्थल के पास मंदिर स्थित है। मंदिर के समीपवर्ती क्षेत्र में अनेक मूर्ति स्थापत्य के प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिससे इस पुरास्थल के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व का भी पता चलता है। (छायाचित्र संख्या-1)।

अध्ययन क्षेत्र :-

प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र की गौरवपूर्ण ऐतिहासिक परम्परा की जानकारी मिलती है। इस अंचल के सांस्कृतिक चेतना को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करने में मौर्य, शुंग, सातवाहन, शक, नाग, गुप्त, हूण, गुर्जर प्रतिहार, कलचुरि, चन्देल एवं परमार राजवंशों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सर्वेक्षण के फलस्वरूप इस क्षेत्र के सभी सम्प्रदायों में धार्मिक समन्वय दिग्दर्शित होता है। यहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त, एवं गणपति इत्यादि सम्प्रदायों से संबंधित अनेक मन्दिरों एवं प्रतिमाओं के प्रमाण मिलते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में बीना तहसील (सागर जिला) के भानगढ़ पुरास्थल के पुरातात्विक सर्वेक्षण के फलस्वरूप ज्ञात उमामहेश्वर, गणेश, विष्णु, महिषासुर मर्दिनी, सप्तमातृका, सती स्तंभ एवं स्थापत्य शिल्प को सम्मिलित किया गया है।

Corresponding Author:**भरत यादव**

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय
इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व
विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर
विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश,
भारत

वर्तमान सर्वेक्षण :-

विवेच्य अंचल में एरण (बीना तहसील) को भारतीय पुरातत्त्व के पटल पर लाने का कार्य सागर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के संस्थापक प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी ने किया। इस पुरास्थल का उत्खनन कार्य प्रो. के.डी. वाजपेयी, डॉ. उदयवीर सिंह, प्रो. सुधाकर पांडेय एवं प्रो. विवेक दत्त झा के निर्देशन में सागर विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग द्वारा संपन्न हुआ। जिससे एरण की नवपाषाण एवम् ताम्रपाषाण संस्कृति के विभिन्न पहलू उजागर हुए। इसके अतिरिक्त बीना तहसील के आस-पास केवल भापसोन, ईसरवाड़ा, दुहरनाला, बरोदिया कला और कंजिया इत्यादि पुरास्थलों का ही परिज्ञान अभी तक था। अतः क्षेत्रीय स्तर पर पुरातात्विक लेखन के अभाव एवं मानवीय गतिविधियों के कारण नष्ट होते जा रहे अज्ञात पुरास्थलों को प्रकाश में लाने तथा इस क्षेत्र में मानव अधिवास की प्राचीनता, सांस्कृतिक निरन्तरता तथा काल विशेष के सन्दर्भ में मानव अधिवास के विस्तार को जानने के लिए शोधार्थी ने मई-जून 2024 ई0 को बीना तहसील का पुरातात्विक सर्वेक्षण कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप भानगढ़ पुरास्थल प्रकाश में आया। जहाँ से उमामहेश्वर, गणेश, विष्णु, महिषासुर मर्दिनी, सप्तमातृका, सती स्तंभ एवं स्थापत्य शिल्प का प्रमाण मिला। जिनका विवरण निम्नलिखित है—

उमामहेश्वर :-

पौराणिक धर्म के प्रमुख तीन देवताओं में शिव संहारक के रूप में स्वीकृत हैं। परन्तु शैव परम्परानुयायी, उन्हें सृष्टि का कर्ता भी मानते हैं, वे इन्हें सर्वोच्च – देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। शिव का व्यक्तित्व बहुपक्षीय है। एक ओर वे अपने भक्तों के लिए अत्यन्त कृपालु और अनुग्रहदाता हैं, तो दूसरी ओर सृष्टि के विनाश हेतु ताण्डव-नृत्य कर्ता भी हैं। शिव को संगीत, नृत्य और योग का प्रणेता भी माना जाता है, पशुपति के रूप में वे समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, वे माहेश्वर और महादेव हैं एवं शक्ति के प्रतीक उमा के पति हैं।^[2] शिल्पग्रन्थों में उमामहेश्वर का प्रतिमा विधान यथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अपराजितपृच्छा, अंशुमदभेदागम, रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण, मयमतम एवं मत्स्यपुराण आदि में इनके प्रतिमाओं के लक्षणों का विवरण प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में उमा-महेश्वर की प्रतिमाओं का तालमान, उनके अंग-प्रत्यंगों के गढ़न में उनके विनियोग, रूपविधान एवं देह विन्यास के अलंकरण के लिये विविध प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही इन ग्रन्थों में प्रतिमा विधान के अनुरूप ही उमा-महेश्वर के आयुधों, अलंकरणों (प्रसाधनिक वस्तुओं) वाहनों, गणों एवं पुत्रों आदि का भी उल्लेख मिलता है।

उमा-महेश्वर का प्रतिमा विधान :-

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार इस प्रतिमा के अन्तर्गत उमा और शिव को एक ही पीठिका पर आलिंगन करते हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए। जटा-जूटधारी शिव के दाहिने हाथ में नीलोत्पल तथा बायाँ हाथ उमा के कंधे पर दिखाना चाहिए। उमा का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर और बाएँ हाथ में कमल पुष्प प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

युगं स्त्री पुरुषं कार्यं मुमेशौ दिव्यं रूपिणौ ।
अष्ट वक्तं तु देवेशं जटा चन्द्रार्धं भूषितम् ॥
वामपाणि तु देवस्य देवस्कन्धेनि योजयेत् ।
दक्षिणं तु करं शम्भोरुतपलेन विभूषितम् ॥^[3]

देवतामूर्तिप्रकरण :- इस ग्रन्थ में उमा-महेश्वर मूर्ति का विवरण देते हुये सूत्रधार मण्डन ने कहा है कि महेश्वर को उमा के साथ द्विभुजी बनाना चाहिये। महेश्वर का एक हाथ भगवती उमा को आलिंगन करते हुए और अन्य हाथ में नागेन्द्र हो, उमा अपना

दाहिना हाथ शिव के कंधे पर तथा बाएँ हाथ में दर्पण लिये हो। इस प्रतिमा के नीचे वृषभ, कुमार स्कन्द, गणेश एवं नृत्यरत भृगिरीट नामक शिवानुचर संस्थित हो।

उमामहेश्वरं वक्ष्य उमया सह शंकरम् ।
मातुलिंगं त्रिशूलश्च विभ्रते दक्षिणे करे ॥
अघस्तब्दषभं कुर्यात् कुमारश्च गणेश्वरम् भृगिरीटं
तथा कुर्यान्नियमान्त्यसं स्थिता ॥^[4]

प्राप्ति स्थल : भानगढ़, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : उमा-महेश्वर प्रतिमा: (छायाचित्र संख्या-2)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

आकार : 41×32×12 सेमी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से उमा महेश्वर की दो प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं – पहली प्रतिमा खण्डित है तथा दूसरी प्रतिमा में उमा महेश्वर ललितासनमुद्रा में आसीन हैं। इस प्रतिमा में उमा महेश्वर का ऊपरी भाग खण्डित हो गया है। शिव के दाहिने हाथ में मातुलिंग या बीजपूरक है, एवं बाएँ से हाथ उमा को आलिंगनबद्ध किये हैं। उमा द्विभुजी हैं, जिनका दाहिना हाथ शिव के स्कन्ध पर तथा बाएँ हाथ का अंकन अस्पष्ट है। उमा-महेश्वर एक दूसरे की ओर देखते हुये दर्शाये गये हैं। वे परम्परागत आभूषण धारण किये हुये हैं। प्रतिमा आसन के नीचे मध्य में महेश्वर के वाहन नन्दी को अंकित किया गया है। नन्दी के बगल में भृंगीऋषि का अंकन है। उनके दायीं ओर उमा का वाहन खण्डित है। प्रतिमा के उपरी भाग में दोनों तरफ अनुचरों को दिखलाया गया है। तथा प्रतिमा वितान पर दोनों ओर उड़ते हुये गंधर्वों का अंकन है।

लिङ्ग-रूप प्रतिमा :-

लिङ्ग रूप में शिव के पूजन की परम्परा प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय थी। वस्तुतः योनिपट्ट पर स्थापित शिवलिंग सृष्टि के मूल में लिंग और योनि या पुरुष और प्रकृति के समन्वय और एकात्मकता का परिचायक है। इस सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि मानव रूप में शिव के विविध स्वरूपों की कल्पना के बाद भी स्वतन्त्र शिव लिंगों के निर्माण और पूजन की अबाध परम्परा मध्ययुग में सभी क्षेत्रों में देखी जा सकती है। लगभग आठवीं से 13वीं शती ई० के मध्य और उसके बाद भी अद्यतन शिव मन्दिरों के गर्भगृह में मानव-विग्रह के स्थान पर शिवलिंगों की ही प्रतिष्ठापना की गयी। यह तथ्य एक ओर शिव के प्रतीक रूप में पूजन की सर्वकालिक लोकप्रियता और दूसरी ओर सृष्टि के मूल में निहित मौलिक तत्त्वों की धार्मिक सामाजिक स्वीकृति को उजागर करता है। खजुराहो, एलोरा, भुवनेश्वर, तंजौर, कांचीपुरम् गंगैकोण्डचोलपुरम् तथा अन्य सभी महत्त्वपूर्ण शिव मन्दिरों के गर्भगृह में शिवलिंग ही प्रतिष्ठित हैं।

संभवतः सैन्धव सभ्यता में भी लिंग पूजन की परम्परा व्यवहार में थी। पर दक्षिण भारत में गुडीमल्लम (उत्तरी आर्कोट जिला) से प्राप्त दूसरी-पहली शती ई० पू० का शिवलिंग लिंगपूजन तथा मूर्ति निर्माण का प्रारंभिकतम पुरातात्विक प्रमाण माना गया है। शिवलिंग के समक्ष भाग में अपस्मार पुरुष पर खड़ी शिव की मानव आकृति भी बनी है। गुप्तकाल में शिवलिंगों का निर्माण और अधिक लोकप्रिय हुआ जिसके कुछ उत्कृष्ट उदाहरण भूमरा, उचहरा एवं खोह जैसे स्थलों से मिले एकमुखी शिवलिंगों में द्रष्टव्य हैं। मध्यकाल में शिव मन्दिरों के गर्भगृह में स्थापित सामान्य शिवलिंग के अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों से एकमुखी से पंचमुखी शिवलिंगों के अनेक स्वतंत्र उदाहरण भी मिले हैं।^[5]

लिङ्ग की संरचना एवं स्वरूप :- प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में लिङ्ग की संरचना तथा स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विवरण प्राप्त होते

हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार लिङ्ग के तीन प्रमुख भाग होते हैं—

1. भोग पीठ, 2. भद्र पीठ, 3. ब्रह्म पीठ, लिङ्ग का ऊपरी वृत्ताकार हिस्सा भोग पीठ, बीच का भाग भद्रपीठ और नीचे का भाग ब्रह्म पीठ होता है। शास्त्रीय ग्रन्थों के विवरण के आधार पर गोपीनाथ राव महोदय ने निष्कल, सकल तथा निर्मित प्रकार में लिङ्ग रूप को विभाजित किया है। स्थिरता और सरलता के आधार पर लिङ्ग को चल और अचल प्रकारों में विभक्त किया गया है।^[6]

प्राप्ति स्थल : भानगढ, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : लिङ्ग-रूप प्रतिमा : (छायाचित्र संख्या-3)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से शिव लिङ्ग की तीन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। जो मन्दिर में एक साथ स्थापित किये गए हैं। इनमें से दो प्रतिमा सुरक्षित हैं, तथा तीसरी प्रतिमा खण्डित अवस्था में है।

गणेश :-

पौराणिक देवमण्डल में गणपति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विघ्ननाशक और मंगलकारी देव के रूप में इनका अस्तित्व है। गणपति और गणेश नाम से अभिहित इस देवता को शिव और पार्वती के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है। गणपति और गणेश का शाब्दिक अर्थ गणों का अधिपति और गणों का ईश (नायक) है। ऋग्वेद में मरुत गणों की चर्चा की गई है। गणपति शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद की एक ऋचा में हुआ है।^[7] वस्तुतः गणपति शब्द का प्रयोग इन्द्र और वृहस्पति के सन्दर्भ में एक विशेषण के रूप में ही हुआ है। कालान्तर में चलकर शिव और उमा के पुत्र को शिव के गणों के अधिपति के रूप में गणपति संज्ञा प्रदान की गई।^[8] गणेश की सिद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियों का भी उल्लेख किया गया है। प्रतिमाओं में भी गणेश को अपनी पत्नियों के साथ प्रदर्शित किया गया है। उनके विवाह से सम्बन्धित प्रसिद्ध कथानक का उल्लेख शिवपुराण में हुआ है।^[9] वास्तव में गणेश का महत्व और मूर्तिकरण प्रथम बार गुप्तकाल में ही प्रकाश में आया। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त जब दक्षिण विजय करके वापस लौट रहा था, तब उसने अपने को गणपतिनाथ का संबोधन दिया था।^[10] गुप्तकाल के अन्तिम चरण तक आते-आते गणेश के सम्पूर्ण स्वरूप तथा व्यक्तित्व का स्पष्ट विकास हो चुका था। इस रूप में उन्हें लम्बोदर, एकदन्ती, शूर्पकर्ण, गजमुख, वक्रतुण्ड, विघ्नेश्वर, सिद्धिदायक के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी थी, और इन विशेषताओं से सम्बन्धित अनेक कथाएँ अस्तित्व में आयीं।^[11] इस प्रकार गणेश का गणपति के अतिरिक्त गजानन, गणेश्वर, एकदन्त, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, वक्रतुण्ड, विनायक, विघ्नराज आदि नामों से भी स्मरण किया जाता है। शिव से सम्बद्ध होने के बाद ही उन्हें गणों का प्रमुख बनाया गया और गणनायक या गणपति कहा गया।^[12]

गणपति का प्रतिमा विधान :-

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अपने एक पैर को पाद पीठ पर और दूसरे को आसन पर रखे हुए गजमुख और चतुर्भुजी गणपति को अपने दाहिने हाथों में त्रिशूल और अक्षमाला तथा बाएं हाथों में परशु और मोदक से भरा पात्र लिये हुए वर्णित किया गया है। इस पुराण के अनुसार वे लम्बोदर और शूर्पकर्ण हों तथा सर्प यज्ञोपवीत और व्याघ्र-चर्म का वस्त्र धारण किये हुए हों, उनके बायीं ओर के दाँत का प्रदर्शन न हो।^[13]

मत्स्यपुराण में गणपति प्रतिमा-विधान के अन्तर्गत कुछ अन्य तत्त्वों को भी समाविष्ट किया गया है। इस पुराण में वर्णित विवरण के अनुसार वे चतुर्भुजी रूप में अपने दाएं हाथों में स्वदन्त

और कमल तथा बाएं हाथों में मोदक और परशु धारण किये हुए हों। उनका मुख गजमुख हो, वे लम्बोदर, शूर्पकर्ण, विशालतुण्ड, एकदन्ती, सर्प-यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिनेत्र युक्त हों। उनके साथ उनका वाहन मूषक तथा ऋद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियाँ हों, उनके कन्धे और हाथ पुष्ट हों तथा मुख नीचे की तरफ झुका हुआ हो।

विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्रं त्रिलोचनम्।
लम्बोदरं चतुर्वाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥
ध्वस्तकर्णे वृहत्तण्डमेकं दष्ट्रं पृथुदरम्।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं चापरे तथा ॥
मोदकं परशु चोव वामतः परिकल्पयेत्।
वृहत्वाक्षिप्तवदनं पीनस्कन्धांघ्रिपाणिकन्॥
युक्तं तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम्॥^[14]

प्राप्ति स्थल : भानगढ, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : गणेश प्रतिमा : (छायाचित्र संख्या-4)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

आकार : 62×34×12 सेमी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से भव्य गणेश प्रतिमा प्राप्त हुई है। जो मन्दिर में स्थापित है। प्रस्तुत प्रतिमा में गणेश को देवता रूप में अष्टभुजाओं से युक्त प्रदर्शित किया गया है। उनके एक भुजा को नृत्य-मुद्रा में में दिखाया जाता है और अन्य भुजाएं पाश, अंकुश, मोदक, परशु, स्वदन्त, वलय तथा अंगुलीय युक्त है।

विष्णु :-

ब्राह्मण धर्म के पाँच प्रमुख सम्प्रदायों में विष्णु के उपासकों का वैष्णव सम्प्रदाय विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। महाकाव्यों और पुराणों के समय तक विष्णु की गणना त्रिदेवों में की जाने लगी और जगत् की स्थिति या पालनकर्ता के रूप में विष्णु एक प्रमुख देवता बन गये। वस्तुतः विष्णु की कल्पना वासुदेव-कृष्ण, वैदिक सौर देवता विष्णु एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के नारायण की संयुक्त अवधारणा की परिणति रही है। परमभागवत् गुप्त शासकों के संरक्षण और पुराणों की रचना के फलस्वरूप विष्णु की प्रतिष्ठा में अतिशय वृद्धि हुई और उनके विभिन्न स्वरूपों का विकास हुआ।^[15] विष्णु की एकल मूर्ति का निरूपण बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर एवं विभिन्न पुराणों तथा परवर्ती शिल्पशास्त्रों में हुआ है। इन ग्रन्थों में विष्णु को सामान्यतः चतुर्भुज तथा श्रीवत्स या कौस्तुभमणि एवं किरीटमुकुट से शोभित और गरुड़ वाहन वाला बताया गया है। उनके करों में शंख, चक्र, गदा और पद्म दिखाने का विधान किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार विष्णु के निचले दाएं और बाएं हाथ क्रमशः गदादेवी और चक्र-पुरुष के मस्तक पर स्थित होंगे। अग्निपुराण में विष्णु के पार्श्वों में पद्मधारिणी श्री और वीणाधारिणी पुष्टि के निरूपण का विधान मिलता है। अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण निरूपित हैं। मध्यकाल में विष्णु की चतुर्भुज एकल मूर्तियाँ ही सर्वाधिक संख्या में उत्कीर्ण हुईं जिनमें परम्परानुरूप विष्णु गरुड़ वाहन (सामान्यतः मानव देहधारी) के साथ रूपायित हैं। आसन या स्थानक विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी हैं। कभी-कभी पद्म के स्थान पर एक हाथ से अभय या वरद-मुद्रा भी व्यक्त है।^[16]

प्राप्ति स्थल : भानगढ, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : विष्णु प्रतिमा : (छायाचित्र संख्या-5 से 7 तक)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से विष्णु की छः प्रतिमाएं खण्डित अवस्था में

प्राप्त हुई हैं। कुछ मन्दिर में स्थापित किये गए हैं। कुछ मन्दिर के बाहर खण्डित अवस्था में बिखरे हुए हैं। ये प्रतिमाएं स्थानक मुद्रा में द्विभुजी एवं चतुर्भुजी हैं। विष्णु के करों में शंख, चक्र, गदा और पद्म दर्शाया गया है। इनका औसत आकार : 36×24×10 सेमी. है।

महिषासुर मर्दिनी :-

देवी ने जब महिषासुर नामक राक्षस का वध किया तो उसके इस रूप को महिषासुर-मर्दिनी कहा गया। देवी माहात्म्य, मत्स्यपुराण और रूपमण्डन में देवी के इस रूप को कात्यायनी कहा गया है। पुराणों में देवी के इस रूप से सम्बद्ध अनेक कथाएँ हैं, जिसमें देवी के द्वारा महिष (भैसे) के रूप में राक्षस के वध का उल्लेख है। इस स्वरूप का विस्तृत विवरण देवी माहात्म्य में मिलता है।^[17]

महिषासुर मर्दिनी का प्रतिमा विधान :-

देवी के दाहिनी भुजाओं में शूल, तलवार, शङ्ख, चक्र, बाण, शक्ति, वज्र, डमरू, छत्र तथा एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है, और बाएँ हाथों में नाग-पाश, खेटक, कुठार, अंकुश, धनुष, घण्टा, ध्वज, गदा, दर्पण तथा मुद्गल रहता है। देवी के सामने असुर का महिष भाग कटा पड़ा रहता है और वास्तविक असुर उसकी गर्दन से निकलता हुआ प्रदर्शित किया जाता है। देवी अपना त्रिशूल उसकी गर्दन में चुभोये रहती हैं और सिंह उसे काटता रहता है, असुर के गर्दन से रक्त की धारा निकलती रहती है, असुर नाग-पाश में बंधा रहता है और उनके हाथों में ढाल तथा तलवार रहती है।

शूलासिंशङ्खचक्राणि वाणशक्तिपवीनपि ।
अभयं डमरू चौव छत्रिकां दक्षिणे करे ॥
उर्ध्वादि क्रमयोगेन विभ्रती सा सदा शुभा ।
नाग पाशं तथा खेटे कुठाराङ्कुशकामुकम् ।
घण्टाध्वजगदादर्श मुद्गर वाम एव च ॥
तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पतित मस्तकः ।
शस्त्रोद्यतकरस्तब्धस्तदग्रीवा संभवः पुमान् ॥
शूलभिन्नो बमद्रक्तो रक्तभ्रूमूर्धजेक्षणः ।
सिंहेन खाद्यमानश्च पाशबद्धो गलेभृशम् ॥
याभ्याङ्ग्राकान्तसिंहा च सव्याघ्रयालीढगासुरे ।^[18]

प्राप्ति स्थल : भानगढ, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : महिषासुर मर्दिनी प्रतिमा : (छायाचित्र संख्या-8)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमा प्राप्त हुई है। जो मन्दिर में स्थापित है। इस प्रतिमा में देवी अपना त्रिशूल महिष के गर्दन में चुभोये रहती हैं। इनके चतुर्भुजी करों को खेटक, धनुष, शूल, तलवार, बाण से युक्त प्रदर्शित किया गया है।

सप्तमातृका :-

एकाकी देवी प्रतिमाओं में मातृका समूह का नामोल्लेख किया जा सकता है। उनकी आराधना समस्त भारत में होती रही किन्तु गुप्तयुग से पूर्व की कोई मातृका प्रतिमा उपलब्ध नहीं हुई है। यों तो देवियाँ अपने देव (पति) के साथ वर्णित हैं तथा युगल मूर्तियाँ भी मिलती हैं, किन्तु एकाकी मूर्तियाँ समूह में प्रदर्शित होने से सात की संख्या के कारण ही सप्तमातृका नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें सभी उन्नत स्वरूप में प्रदर्शित नहीं हैं। केवल वाराही तथा चामुण्डा भिन्न स्वरूप हैं। वाराही में सूकरमुखी देवी भैसे पर बैठी हैं तथा चामुण्डा भयंकर चेहरे के साथ प्रेतासना हैं। मातृभावना के प्रदर्शन के निमित्त प्रत्येक देवी के गोद में एक शिशु है जो माता

के स्तन का दुग्धपान कर रहा है। इलौरा का प्रदर्शन अतीव सुन्दर है जिसमें किसी भावना या प्रतीक का अभाव नहीं है। दोनों पार्श्व में वीरभद्र तथा गणेश की मूर्तियाँ हैं जो उनके संरक्षक कहे जाते हैं।¹⁹

सप्तमातृका का प्रतिमा विधान :-

विष्णुधर्मोत्तर, मार्कण्डेय पुराण (अध्याय 13-देवीमाहात्म्य), अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन में सात या आठ मातृकाओं के नाम तथा लक्षण बताये गये हैं। इनमें ब्रह्माणी, शिवा (या माहेश्वरी), वैष्णवी, ऐन्द्री (या इन्द्राणी), कौमारी, वाराही और चामुण्डा (या चण्डिका) के नाम हैं। कभी-कभी आठवीं मातृका के रूप में नारसिंही या वैनायकी और कभी सप्तमातृका समूह में वाराही के स्थान पर नारसिंही का उल्लेख मिलता है।²⁰

प्राप्ति स्थल : भानगढ, सागर जिला, (म.प्र.)

प्रतिमा : सप्तमातृका प्रतिमा : (छायाचित्र संख्या-9)

प्रकृति : बलुआ प्रस्तर

काल : 11वीं शताब्दी ईस्वी.

आकार : 92×24×10 सेमी.

सर्वेक्षित पुरास्थल से सप्तमातृका की प्रतिमा प्राप्त हुई है। जो मन्दिर के बाहरी बाह्य भित्ति पर स्थापित है।

सती स्तंभ :-

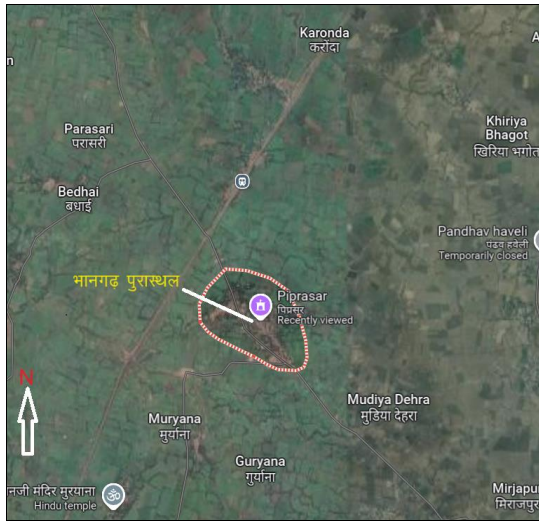
सर्वेक्षित पुरास्थल से प्राप्त दो सती स्तंभों के प्रमाण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र में सती प्रथा का प्रचलन रहा होगा। जिसमें मृत लोगों के स्मारकों का निर्माण प्राचीन काल से ही प्रचलन में है। स्मारक अलग-अलग क्षेत्रों और समयों में अलग-अलग नायक-सती पत्थरों की प्रथा साहित्य के साथ-साथ मूर्तिकला रूपों में भी अच्छी तरह से परिलक्षित होती है। सती स्मारक पत्थर मृतक की पत्नी द्वारा आत्मदाह करने की स्मृति में लगाए जाते हैं। यह स्वैच्छिक या जबरन आत्महत्या का प्रयास हो सकता है। बाद के घटनाओं में यह प्रथा द्वारा निर्धारित हो सकता है या यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि शोक संतप्त पत्नी अपने पति के बाद जीवित रहने की इच्छा के सामाजिक कलंक का सामना नहीं कर सकती। प्रस्तुत सती पट्ट पर हाथ का प्रतीक चिह्न जिसके एक तरफ सूर्य का अंकन तो दूसरी तरफ चन्द्रमा के अंकन से ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे तब तक उसका यशोगान रहेगा। सती का एक अन्य पुरालेखीय संदर्भ एरण में पाए गए 510 ईस्वी. के स्मारक स्तंभ शिलालेख से मिलता है, जिसे भानुगुप्त के शासनकाल के दौरान उनके सामंती प्रमुख गोपराज के लिए बनाया गया था, जिनकी पत्नी ने उनकी मृत्यु पर सती हो गई थी। यह भारत में सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण है।²¹ (छायाचित्र संख्या-10 और 11)

निष्कर्ष :-

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि सर्वेक्षित पुरास्थल से प्राप्त प्रतिमाओं, बीजपूरक, वृहद आमलक एवं स्थापत्य शिल्प के प्रमाण से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन शिल्पियों द्वारा शिल्पशास्त्रीय विधान एवं कलात्मक रूप से इनका शिल्पांकन किया गया है। वास्तव में यह क्षेत्र पूर्व मध्यकाल में शैव, वैष्णव, गणपति एवं शाक्त सम्प्रदायों का संगमस्थल रहा होगा। इनके अध्ययन से तत्कालीन धर्म, कला, दर्शन एवं अध्यात्म के साथ-साथ सांसारिक सौन्दर्य बोध का भी समग्रतापूर्वक समागम दिग्दर्शित होता है। अतीत के यह वैभव इस शोध आलेख के माध्यम से भविष्य में विद्वानों, शोधार्थियों तथा विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची :-

1. पाण्डेय, जय नारायण, पुरातत्त्व विमर्श, सप्तमदश संस्करण, 2017, इलहाबाद, पृष्ठ 04
2. बनर्जी, जे० एन०, दि डवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, द्वि० सं०, कलकत्ता, 1956, पृ० 465
3. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 105, 8-10
4. देवतामूर्तिप्रकरण 6, 31, 32
5. तिवारी, मारुतिनन्दन एवं कमल गिरी, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997, पृ० 22-23
6. गोपीनाथ, राव, एलिमेंट्स ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी, खंड 1, दिल्ली, पृ० 279
7. गणनां त्वां गणपति हवामहे, ऋग्वेद, 2, 23, 1
8. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृ० 134
9. शिवपुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड, 33, 1-53
10. फ्लीट, का० इ० इ०, भाग 3, पृ० 06
11. श्रीवास्तव, बृजभूषण, तत्रैव, पृ० 137
12. गोपीनाथ, राव., तत्रैव, खंड 1 पेज 35-63
13. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 71, 13-16
14. मत्स्यपुराण, 260, 52-55
15. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 117, 20-22
16. रामाश्रय, अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमायें, आगरा, 1967, पृ० 161-170, जे०एन० बनर्जी, तत्रैव, पृ० 428-445, गोपीनाथ राव, तत्रैव, खण्ड-1, भाग-2, पृ० 300-319,
17. तिवारी, मारुतिनन्दन एवं कमल गिरी, तत्रैव, पृ० 77
18. बनर्जी, जे० एन०, तत्रैव, पृ० 501
19. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 117, 20-65
20. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1970, पृ० 142
21. तिवारी, मारुतिनन्दन एवं कमल गिरी, तत्रैव, पृ० 137
22. फ्लीट, तत्रैव, पृ० 88-90

**छायाचित्र संख्या-1:** अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक**छायाचित्र संख्या-2:** उमा-महेश्वर अवस्थिति**छायाचित्र संख्या-3:** लिङ्ग-रूप प्रतिमा**छायाचित्र संख्या-4:** गणेश



छायाचित्र संख्या-5: विष्णु



छायाचित्र संख्या-6: विष्णु



छायाचित्र संख्या-7: विष्णु



छायाचित्र संख्या-8: महिषासुर मर्दिनी



छायाचित्र संख्या-9: सप्तमातृका



छायाचित्र संख्या-10: सती स्तंभ



छायाचित्र संख्या-11: सती स्तंभ